[निजी प्रसार के लिए]

सी.एच.आर.आई.

अंक ७ नई दिल्ली, सितंबर २०१०

लोक पुलिस

जनतांत्रिक पुलिस के लिए

मासिक पत्रिका

'सबसे ज़्यादा उत्थान, कांस्टेबुलरी का करने की आवश्यकता है'

श्री विजेंद्र जैन

आम तौर पर यह प्रतीत होता है कि समस्त आपराधिक न्याय व्यवस्था पुलिस के इर्द–गिर्द ही घुमती है, जबकि यह समझने की आवश्यकता है कि पुलिस इसकी केवल एक कड़ी समान है। पुलिस भी 'न्याय' के लिए दूसरी संस्थाओं की कार्य कुशलता पर निंभर करती है जैसेः न्यायपालिका और अभियोजन पक्ष। न्याय–व्यवस्था के दूसरे विभागों का पुलिस व्यवस्था के बारे में क्या विचार है, इससे अवगत कराने के लिए इस अंक में साक्षात्कारों की श्रृंखला में हम न्यायपालिका के एक पुर्व प्रतिनिधि से वार्तालाप प्रस्तुत कर रहे हैं।

पंजाब व हरियाणा उच्च न्यायालय के भुतपुर्व मुख्य न्यायाधीश श्री विजेंद्र जैन, से पुलिस के कानूनी दायित्वों के विभिन्न पहलुओं पर ज़ीनत मलिक का साक्षातकार।

क्या आपने अपनी कार्य–अवधि में पुलिस द्वारा किसी प्रकार के कानुनों और मानवाधिकारों के उल्लंघन का अनुभव किया है?

मेरा व्यक्तिगत अनुभव उच्च न्यायालय का है जहां पर पुलिस से सीधे वास्ता न के बराबर या बहुत कम पड़ता है, क्योंकि यह अपील कोर्ट होती है। फिर भी, बहुत से आपराधिक ही नहीं सिविल मामलों में भी पुलिस को कानूनों का उल्लंघन करते हुआ पाया गया है, जैसेः पुलिस एफ. आई.आर. दर्ज नहीं करती, गरीबों, महिलाओं और दूसरे कमज़ोर वर्ग के लोगों की शिकायतों पर ध्यान नहीं देती। इसके अलावा संरक्षण में प्रताड़ना तथा हत्या जैसे मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामले अकसर सामने आते रहे हैं। सिविल मामले, जहां कोई व्यक्ति देश के बाहर है और उसकी सम्पत्ती इस देश में है तो उसकी ज़मीन पर ज़मीन माफिया की नजर होती है। पुलिस के साथ मिलकर वे फर्जी कागजात की मदद से उस सम्पत्ती का सौदा कर देते हैं। फिर केस जब हमारे पास आता था तो उचित निर्देश देकर ऐसे कानूनी उल्लंघन को दुरूस्त किया जाता था। स्वभाविक है पुलिस ऐसा पैसों के लालच में करती है।

क्या आपके विचार में पुलिस संगठन के प्रबंधन और नेतृत्व में कुव्यवस्था के कारण पुलिस में लालच और भ्रष्टाचार मौजूद है? इस कुव्यवस्था को कैसे दूर किया जा सकता है?

पुलिस को संवेदनशील बनाने की बात मैं समझता हुं लेकिन मुझे यह समझ नहीं आता है किस प्रकार पुलिस को जनतांत्रिक बनाया जा सकता है। अगर कोई आदेश दिया गया है तो उन्हें इसका पालन करना ही है। वे यह नहीं कह सकते कि यह सही है या ग़लत।

दरअसल, यह संवेदनशीलता का सवाल है जहां पुलिस को प्रशिक्षण देकर और शिक्षित करके व्यवहारों और कर्तव्यों के प्रति सजग किया जा सकता है। यह काम उन लोगों का है जिन पर पुलिस प्रबंधन की ज़िम्मेदारी है कि वे पुलिस को मानवाधिकारों के उल्लंघन और भ्रष्टाचार से बचने के तरीके सिखाएं।

क्या पुलिस कानूनों में बदलाव की भी आवश्यकता है?

जो अंग्रेजों के समय का पुलिस कानून है उसमें बदलाव करने की आवश्यकता है क्योंकि उनका मकसद अलग था। वह अपनी प्रजा को नियंत्रित करना चाहते थे, उनकी नजर में प्रजा के कोई मानव–अधिकार नहीं थे। इसलिए उन्होंने वैसे ही कानून बनाए। लेकिन, आज की प्रजातांत्रिक व्यवस्था में ऐसे कानूनों की कोई आवश्यकता नहीं है जहां व्यक्ति के सम्मान की सुरक्षा न हो सके। आज के समाज में ऐसे तमाम पुराने कोड को बदलने की आवश्यकता है।

जब तक पुलिस में सुधार नहीं हो रहा है, तब तक पुलिस और खास कर कांस्टेबुलरी के काम करने से संबंधित आपका क्या मशवरा है?

अगर पुलिस को प्रभावशाली बनाना है तो सबसे ज्यादा उत्थान कांस्टेबुलरी का करने की आवश्यकता है । यह पुलिस का सबसे अधिक शोषित वर्ग है। जब तक उनके रहने, वेतन और अवकाश के मौजूदा अवसरों में बदलाव लाकर उनकी स्थिति को बेहतर नहीं बनाया जाता, उनसे सही काम की अपेक्षा करना अनुचित है। यह वह वर्ग है जो ज़मीनी स्तर पर सारी परेशानियां झेलता है चाहे वह आम लोगों की घृणा और आक्रोश हो या फिर वरिष्ठ अधिकारियों की फटकार।

इनकी मनोवैज्ञानिक स्थिति अत्यधिक दयनीय है। एक कांस्टेबल जब घर जाता है तो पत्नी फटकार लगाती है कि सब्जी भी लेकर नहीं आते हो। वही कांस्टेबल जब थाने आता है तो उसे सब–इंस्पेक्टर फटकार लगाता है कि 'जा मेरी भी सब्जी लेकर आ' ऐसे हालात में उससे क्या अपेक्षा की जा सकती है? इसलिए, जो भी नया वेतन आयोग आए वह सबसे पहले इनका वेतन बढ़ाए और इनकी दूसरी सुविधाएं बढ़ाई जाएं ताकि इनके काम में साकारात्मक बदलाव आए।

आपके विचार में पुलिस में क्या बदलाव करने की आवश्यकता है? आधुनिक भारत की पुलिस में आप क्या बदलाव देखना चाहेंगे?

नीति के स्तर पर पुलिस के कुप्रदर्शन का असली कारण है, पुलिस में मौजूद भ्रष्टाचार। यह तब तक रहेगा जब तक केस दर्ज करने के लिए अलग और केस की जांच के लिए अलग पुलिस की व्यवस्था नहीं की जाएगी। जांच करने के लिए अलग पुलिस विंग और कानून व्यवस्था के लिए दूसरे विंग में विभाजन होना ही चाहिए क्योंकि जिस पुलिस को केस की जांच करनी है अगर उसी को उसकी रिपोर्ट दर्ज करने का अवसर भी देंगे तो यह तो वही तय करेगा कि वह अपने हिस्से में कितना काम ले और किस केस को दर्ज न करे। इस व्यवहार का एक बड़ा कारण है कि वे बेहद दबाव और कर्मियों के अभाव में काम करते हैं। इसलिए आम जनता की शिकायत सुनने वाली पुलिस और वह पुलिस जिनका वास्ता कानून तोड़ने वाले मुजरिमों से लगातार होता है, इन्हें बिल्कुल अलग करना होगा तभी पुलिस के काम में पारदर्शिता आएगी और इनकी जवाबदेही बढ़ेगी।

इस बदलाव के लिए सिफारिश पुलिस कमीशन की रिपोर्ट में भी की गई है। इसके अलावा उच्चतम न्यायालय के निंदेशों के अनुसार भी यह विभाजन होना चाहिए, लेकिन सरकार ने अब तक ऐसा नहीं किया है।

इसके अलावा पुलिस का उपयोग गैर पुलिसिंग कामों में बिल्कुल नहीं होना चाहिए जैसेः बहुत अधिक पुलिसकर्मी नेताओं की सुरक्षा के लिए तैनात किये जाते हैं। सुरक्षा देने की आवश्यकता गवाहों को है और यह सरकार का दायित्व है कि 'सच' सामने लाने के लिए उनको सुरक्षा प्रदान कि जाए। जनता के पैसे से नेताओं को सुरक्षा प्रदान करना बंद होना चाहिए। अगर नेता इतना ही असुरक्षित है तो वह स्वयं अथवा अपनी पार्टी द्वारा अपनी सुरक्षा का इंतजाम करे। लेकिन, किसी भी हालत में जनता का पैसा इस काम पर खर्च नहीं होना चाहिए। अगर ऐसा हो सका तो पुलिसकर्मियों की कमी से जुझते हुए विभाग को भी थोड़े और लोग पुलिसिंग के कामों के लिए मिल जाएंगे।

आपके अनुसार बदलाव न होने के मुख्य कारण क्या हैं?

बदलाव न होने का मुख्य कारण है लोगों में इसके प्रति जागरूकता न होना। उन्हें मालूम ही नहीं है कि पुलिस के व्यवहारों में बदलाव भी लाया जा सकता है। नेताओं को इसकी आवश्यकता नहीं लगती क्योंकि वे अपनी ताकत कम नहीं करना चाहते।

क्या आपके विचार में, पुलिस बल में महिलाओं की संख्या बढ़नी चाहिए? क्या इससे पुलिस को फायदा होगा? क्या इसके लिए महिलाओं को भर्ती में आरक्षण देना चाहिए?

हां, पुलिस बल में महिलाओं की संख्या अवश्य बढ़नी चाहिए। इससे पुलिस के व्यवहार में बदलाव भी आएगा। लेकिन, मैं आरक्षण के पक्ष में नहीं हुं क्योंकि इससे भ्रष्टाचार और बढ़ेगा। महिलाएं आरक्षण के बगैर भी आने में सक्षम हैं।

'सूचना का दुरूपयोग'– सी.बी.आई. मांगे गोपनीयता

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 (आर.टी.आई.) के अस्तित्व में आने के उपरांत कई सरकारी संस्थाओं की यह प्रतिक्रिया रही है कि इस कानून का दुरूपयोग हो रहा है। ये बात और है कि कोई भी यह बताने में सक्षम नहीं कि ऐसा कैसे हो पा रहा है।

दरअसल, सेन्ट्रल ब्योरो ऑफ इन्वेस्टीगेशन (सी.बी.आई.) ने कहा है कि उसे आर.टी.आई. कानून के तहत पिछले वर्ष 4000 आवेदनों का जवाब देना पड़ा था। सी.बी.आई. के अनुसार, "जिन लोगों पर आपराधिक मामला चल रहा होता है, वे इस कानून के तहत आवेदन भेजकर अपने केस की जानकारी हासिल कर लेते हैं ताकि अपना बचाव तैयार कर सकें।" यह बात सबके लिए डरावनी है कि बुरे लोग सूचना के अधिकार के "दुरूपयोग" के कारण कानून से बच कर निकल जा रहे हैं। इस कथन में दो धारना निहित है। पहला, जो लोग भी केस में उलझे हुए हैं वे निश्चित रूप से दोषी हैं। दूसरा, सूचना के अधिकार का इस्तेमाल करके वे कानून से बचने के लिए कुछ ऐसा कर रहे हैं जो बिल्कुल अनुचित है। इन गलत धारणाओं से छुटकारा पाने की ज़रूरत है।

कानूनी प्रक्रिया में दो बढ़िया तर्क है जिन्हें व्यापक रूप से अच्छा नहीं समझा जाता है। पहला, हमारे कानून का मूल सिद्धांत, जो बहुत तेजी से लोगों के ज़हन से निकलता जा रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति निर्दोष है जब तक कि उस पर दोष सिद्ध नहीं हो जाता है। उस दोष के प्रत्येक अंश को साबित करने की जिम्मेदारी अभियोजन पक्ष पर होती है। दूसरा, क्योंकि पीड़ित के पास हमेशा सरकार की ताकत होती है जो उसकी तरफ से लड़ती है, जबकि बचाव पक्ष को अपना केस खुद ही लड़ना होता है। आरोपी का अधिकार है कि उसे अपने ऊपर लगे सभी आरोपों की बुनियाद के बारे में पता हो ताकि वह अपने बचाव का सबसे अच्छा इंतजाम कर सके।

कोर्ट में कोई अचानक पेश किया गया कौशल मान्य नहीं होता। अभियोजन को चाहिए कि केस से जुड़े तमाम तथ्यों को शुरूआत के समय में ही क्रमबद्ध करके बचाव पक्ष को इसकी जानकारी दे। ऐसा करना बहुत से कारणों से आवश्यक है: एक, जैसा कि नियमों में बताया गया है कि न्याययुक्त मुकदमा इस बात की अपेक्षा करता है कि आरोपी को यह जानकारी हो कि उसे किस केस का जवाब देना है ताकि वह अपने बचाव का उचित इंतजाम का सके। दूसरा, इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि एक सच्चे केस का जवाब देना है, ऐसा नहीं है कि कानून का उपयोग किसी को बेवजह परेशान करने के लिए किया जा रहा है।

यह आरम्भिक फैसला कि किसी मामले में अपराध के तमाम अंश मौजूद हैं कि नहीं, जज का होता है न कि अभियोजन पक्ष का। इसलिए जज को उन सभी तथ्यों और परिस्थितियों की जानकारी होनी चाहिए जिस पर अभियोजन अपना केस स्थापित कर रहा है। अंत में, इस बात को निश्चित करने के लिए कि जिस व्यक्ति के खिलाफ केस है उसके इस केस में शामिल होने की पर्याप्त जानकारी मौजूद है। ताकि, बेवजह सरकारी खजाने का पैसा, अदालत का समय, सरकार की ताकत न बर्बाद हो और बाद में इस केस से कुछ भी निकल कर न आए। सी.बी.आई. को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि इसने अपने यहां आने वाले आवेदनों में से 95 प्रतिशत के जवाब में मांगी गई जानकारी उपलब्ध कराई है। यही इस बात का सबूत है कि जो जानकारियां मांगी गई थी, वह साधारण थी और कानून के तहत दी जानी चाहिए थी। वास्तव में, अगर व्यवस्था इतनी ही सहजता से चलती होती जितना इसे होने चाहिए था तो, जिसके खिलाफ केस दायर किया गया हो उसे ये जानकारियां अपने आप ही मिलनी चाहिए न कि उसे 'सूचना के अधिकार' के तहत हासिल करने की खुशामद करनी पड़ती। क़ायदे से जो सवाल उठाना चाहिए वो ये है कि एक मजबूत बचाव के लिए जो जानकारियां स्वतः ही मिलना अधिकार है, उसके लिए इतनी खुशामद क्यों करनी पड़ती है?

वास्तव में, जानकारी देने से हमेशा ही बात की सच्चाई जानने का मौका मिलता है। हांलाकि 'दुरूपयोग' का आरोप चारों ओर है लेकिन, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि बुरे लोग जानकारी मिल जाने के कारण बच कर निकल जाते हैं। बल्कि, यह तर्क दिया जा सकता है कि मुकदमे अब अधिक न्यायसंगत हो गए हैं क्योंकि सबको पता होता है कि उनके केस में क्या हो रहा है।

अगर अधिक जानकारी की वजह से लोग कानून से बचकर निकल रहे हैं, तो भी इससे यह पता चलता है कि पुलिस और अभियोजन का केस कितना कमज़ोर था और इसे मज़बूत करने के लिए जांच एजेन्सी को बेहतर हुनर, अवसंरचना, मानव शक्ति देने की तथा अभियोजन से अधिक जवाबदेही लेनी की आवश्यकता है, जो कि आधे–अधुरे केस तैयार करती है।

दोषी का कानून की पकड़ से बच निकलने का कारण, सूचना के अधिकार को समझने का अर्थ है कि दोष किसी ग़लत जगह लगाया जा रहा है।

– माया दारूवाला

संपादक को चिट्ठी

महोदया,

एफ.आई.आर.–'शिकायत' या मुसीबत? शीर्षक से छपा लेख पढ़कर यह पत्र लिखना ज़रूरी समझा। मैं 20 वर्षों से सीधी भर्ती का उप–निरीक्षक हुँ तथा कई पुलिस अधिक्षकों जिनमें राज्य पुलिस सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारी थे, के अधीन थाना प्रभारी रहा हुँ और आज भी हुँ। थाना प्रभारी या अन्य पुलिस अधिकारी जिनका दायित्व एफ.आई.आर. दर्ज करना है, वे मेरे अनुभवों से ऐसा करने से आना–कानी निम्न कारणों सें करते हैं:

1. एफ.आई.आर. दर्ज होने की परिधि में आने वाली सभी घटनाओं का एफ.आई.आर. दर्ज करने से मना करने का एक कारण यह है कि इससे अपराधों का आँकड़ा बढ़ जाता है। वरिष्ठ अधिकारी आंकड़ों में अधिक विश्वास करते हैं और साथ ही यह भी चाहते हैं कि सभी संज्ञय अपराधों की एफ.आई. आर. दर्ज हो, जो संभव नहीं है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा एफ.आई.दर्ज करने से सम्बन्धित दिशा–निर्देशों से अवगत होते हुए तथा पालन नहीं करने पर उसके परिणामों को भुगतने की बाध्यता होते हुए भी थाना प्रभारी एफ.आई. आर. दर्ज करने में संकोच करता है। अपराधों का आँकड़ा बढ़ते ही उस पर तरह–तरह के आरोप तय कर दिये जाते हैं जैसे: नियंत्रण नहीं है, दबदबा नहीं है। जबकि सत्यता यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आपसी ज़मीनी विवाद या शिक्षा के अभाव के कारण घटित अपराधों को नियंत्रित करना संभव नहीं है।
2. जो संपत्ति संबंधी अपराध हैं जैसे: चोरी, लूट, डकैती वगैरह इनकी एफ.आई.आर. दर्ज करने में थाना प्रभारी इस कारण कतराते हैं क्योंकि प्रायः सभी मामलों की पतारसी नहीं हो पाती है। सभी थानों पर स्टाफ की कमी है, विवेचना अधिकारियों की कमी है, कानून–व्यवस्था व वी.आई.पी. काम इतने अधिक हो गए हैं कि अनुसंधानकर्ता अधिकारी अपराधों की विवेचना में पर्याप्त समय नहीं दे पाता है। थाना स्टाफ में टीम–वर्क की कमी है और इस कारण संपत्ति संबंधी अपराधों की पतारसी नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप, मामलों में बरामदगी का प्रतिशत कम होता है तथा पुनः इसकी गाज संबन्धित थाना प्रभारी या विवेचक पर गिरती है। ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए ही वह एफ.आई.आर. दर्ज करने में संकोच करता है।
3. वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को अपने थाना–प्रभारियों और अधिनस्थ स्टाफ को एफ.आई.आर. लिखने एंव नियमानुसार उसके निराकरण करने की खुली छूट देनी होगी तभी अपराधों को छुपाने की मानसिकता खत्म होगी। वर्तमान समय में कोई गंभीर अपराध–चोरी, लूट या डकैती घटित होता है तो थाना प्रभारी पर पदस्थ लोगों से इस तरह व्यवहार किया जाता है जैसे उन्हीं ने यह अपराध किया हो। गिरे हुए मनोबल से सफलता कभी संभव नहीं है।
4. वर्तमान मिडिया पुलिस की इस कदर आलोचना करने में विश्वास करती है जैसे समाज की सभी बुराईयों की जड़ पुलिस ही है। मिडिया के दबाव को महसूस कर अधिकारी

(शेष पृष्ट ३ पर)

भ्रष्टाचार के खिलाफ न्याय की जंग

सलेबी, इंटरपोल का पुर्व प्रमुख रह चुका है। इंटरपोल वह संगठन है जो अंतरराष्ट्रीय पुलिस सहायता को सहज बनाता है। सलेबी अफ्रिकी राष्ट्रीय कांग्रेस के मुक्ति के लिए संघर्षरत सबसे अनुभवी सिपाही रह चुका है। हाल ही में दक्षिण अफ्रिका के एक उच्च न्यायालय ने सलेबी को भ्रष्टाचार एंव ड्रग तस्कर से घूस लेने के आरोप में दोषी पाया ।

दक्षिणी अफ्रिकी प्रेस एसोसिएशन ने बताया कि सलेबी को दोष सिद्धी के बाद, उसे जमानत पर छोड़ दिया गया है जबकि अपील विचाराधीन है। दक्षिण अफ्रिका न्युज वेबसाईट ने न्यायाधीश श्रीमान मेयर जौफी को यह कहते हुए बताया कि 'सलेबी ने कोई पछतावा नहीं दिखाया है, उसने झूट बोला और सबूतों को गढ़ा है तथा पुलिस को शर्मिंदा किया है।'

जो कुछ भी दूसरे देशों में होता है शायद ही कभी हमें मालूम हो पाता है, लेकिन कभी ऐसी कोई एक कहानी हमें इस बात का सबक पढ़ा सकती है कि हमसे बहुत दूर बैठे लोग काम कैसे करते हैं।

दक्षिण अफ्रिका, अफ्रिका के ठीक दक्षिणी छोर पर स्थित है। इसकी आबादी 49320500 है और 150470 लोगों का पुलिस बल है। इनका पुलिसःजनता का अनुपात प्रत्येक 317 व्यक्ति पर 1 का है।

1994 तक वहां केवल 'गोरों' की सरकार थी। इस दौरान शाषित प्रजा जोकि पूरी जनसंख्या का 9 प्रतिशत थी, को कई खास जगहों पर रहने की इजाज़त नहीं थी, अच्छी नौकरी से वंचित रखा जाता था और एक अलगाव और अपवर्जन भरा जीवन जीना पड़ता था।

पुलिस के तकरीबन सभी बड़े अधिकारी खासतौर से 'गोरे' थे। इन उच्च अधिकारियों को आम जनता का नियंत्रण करने के लिए प्रशिक्षित किया गया था। उन्हें गोरी सरकार की सेवा के लिए बनाया गया था और उन्होंने यह काम हिंसात्मक ढ़ंग से किया।

इस 'रंगभेद नीति' के खत्म होने के साथ ही पुलिस को बदलना पड़ा और एक नया पुलिस कानून, सिद्धांत, भर्ती, प्रशिक्षण और काम करने के नये तरीकों को लाना पड़ा। लेकिन, इतने अहम बदलाव के बीच कुछ बहुत गलत लोग काम करने लगे थे। सलेबी भी इन्हीं गलत लोगों में से एक निकला। हांलाकि, सलेबी के मुकदमे और सजा के बाद दक्षिण अफ्रिका ने एक 60 वर्ष के ऐसे व्यक्ति को अपराधी पाया जिसने खुद अपराधों के खिलाफ कभी धर्मयुद्ध लड़ा था। सलेबी पर आरोप था कि उसने तकरीबन 120,000 रांड (£10,338) ग्लेन अगलिओटी नामक सजावर ड्रग तस्कर से प्राप्त किया था और गुप्त पुलिस रिपोर्ट भी उसे दिखाता रहता था। दरअसल, अगलिओटी और सलेबी में एक भ्रष्ट तरीके की दोस्ती हो गई थी जिसके तहत वो उससे कीमती कपड़े और उपहार प्राप्त किया करता था और बदले में गुप्त जानकारियां दिया करता था ताकि वह कानून से बचा रहे। लेकिन पकड़े जाने पर अगलिओटी सरकारी गवाह बन गया और अपने ही कथित 'मित्र' के खिलाफ गवाही भी दी।

हांलाकि, सलेबी का कहना है कि वह निंदोष है और अपने दुश्मनों की साजिश का शिकार हैं क्योंकि उसने उच्च अपराधों से लड़ने वाली एक इकाई 'स्कौरपियन' का विरोध किया था। इसलिए उसने उच्च न्यायालय में अपील दायर कर रखी है।

किसी बड़े पुलिसकर्मी के खिलाफ न्याय हासिल करना आसान नहीं होता है, लेकिन दक्षिण अफ्रिका ने ऐसा कर दिखाया। इस मामले ने यह संदेश दिया है कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कितने ऊंचे पद पर हैं, कानून के लंबे हाथों से बच नहीं सकते। इस केस से ईमानदार पुलिस अधिकारियों को प्रोत्साहन मिलेगा और जो उतने साफ नहीं हैं उनके लिए खतरे की घंटी बज उठेगी। सबसे बढ़कर, इससे जनता को एक संदेश गया है कि उन्हें कानून व्यवस्था पर विश्वास बनाए रखना चाहिए। जज ने 15 साल की सजा सुनाते हुए यह साफ कर दिया कि जो पुलिसकर्मी विश्वास तोड़ेंगे उन्हें लम्बी सजा मिलेगी। उन्होंने कहा "कोई भी संतोषजनक कारण नहीं है जिसके लिए इससे कम सज़ा दी जाए।"

लेकिन, हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि दूसरे देशों में भी भ्रष्टाचार है इसलिए हमारा भ्रष्टाचार किसी तरह ठीक है। दुनिया में हर जगह किसी न किसी रूप में भ्रष्टाचार मौजूद है, लेकिन जो बात मायने रखती है वह यह कि हम इससे कैसे निपटते हैं।

आप अपने विचार हमें बताएं। आप क्या सोचते हैं? हमें भ्रष्टाचार का सामना कैसे करना चाहिए और इसकी शुरूआत कहां से करनी होगी? हम आपके विचार 'लोक पुलिस' में आपके नाम के साथ या अज्ञात जैसा आप चाहेंगे, छापेंगे।

— माया दारूवाला

...पृष्ट २ का शेष

अपराधों को छिपाते हैं। इसका हल तभी संभव है जब विभाग के वरिष्ठ अधिकारी मिडिया से ज्यादा महत्व अपने स्टाफ को दें तथा मैदान की वास्तविकता को समझ कर सही दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित करें।

5. मेरी राय में संभवतः एक या दो प्रतिशत ही थाना प्रभारी होंगे जो एफ.आई.आर. दर्ज नहीं करना चाहेंगे। कोई भी जनता के बीच में बुरा बनना नहीं चाहता है किन्तु संसाधनों का अभाव, समय की कमी, विवेचना स्टाफ की कमी, पेंडिंग मामलों का अत्यधिक बोझ, वरिष्ठ अधिकारियों की नकारात्मक टिप्पणी, मिडिया के दबाव आदि ऐसे कारण हैं जिससे अधिकारी एफ.आई.आर. दर्ज करने से बचने का प्रयास करता है।
6. थानाप्रभारी की क्षमता को आंकड़ों के जाल, बरामदगी का प्रतिशत, आनन–फानन में मामलों का निष्पादन करने की प्रवृत्तियां, अपराधों के लिए अधिकारी को ही जिम्मेदार मानने जैसी बातों से अगर बचा जाए तो शायद ही कोई थाना प्रभारी होगा जो संज्ञय अपराधों के लिए एफ. आई.आर. दर्ज करने से इंकार करेगा। इस प्रवृत्ती को खत्म करने के लिए विभाग को अपनी मानसिकता बदलनी होगी। उपरोक्त कारण मेरी निजी राय हैं जो मैंने अपने सेवा काल में अनुभव किये हैं। थाना प्रभारी का निजी स्वार्थ भी एक कारण हो सकता है। इन कारणों के अलावा भी कई कारण हो सकते हैं परन्तु मेरे विचार में सबसे महत्वपुर्ण कारण पुलिस और प्रशासन का आंकड़ेबाजी में विश्वास करना है। आशा है, इस मुद्दे पर आपके मासिक पत्रिका से कोई रास्ता निकले और थाना प्रभारियों पर अपराधों को कम करने और एफ.आई.आर. न लिखने का जो दबाव है वह कम हो।

— सदस्य, मध्य प्रदेश पुलिस

आपके विचार

संपादक जी,

मैं आप से निवेदन करना चाहता हुं कि आप हमारे राजस्थान सरकार के गृह मंत्री व डी.जी.पी. से यह पूछें कि राजस्थान में अच्छे, साहसिक व उत्कृष्ट काम करने के लिए पुलिसकर्मियों को विशेष पदोन्नती (ग्लैंडरी अवार्ड) देने की क्या प्रक्रिया है? एक पुलिस अधिकारी के अच्छे कामों के लिए ज़िला अधिक्षक, पुलिस महानिरीक्षक, और कमेटी जिसमें ए.डी.जी.(क्राईम) व दो महानिरीक्षक स्तर के अधिकारी होते हैं, जब इन सबके द्वारा किसी अधिकारी की फाईल पर ग्लैंडरी अवार्ड के लिए सिफारिश किया गया हो, फिर भी उसे डी.जी.पी. साहब पास नहीं करते, तो ऐसा क्यों? क्या आज तक वर्तमान डी.जी.पी. साहब ने किसी अधिकारी को ग्लैंडरी प्रोमोशन दिया है?

आज, पुलिस मुख्यालय में तकरीबन 50 फाईलें इसके लिए धूल चाट रही हैं। पुलिस अधिकारियों का मनोबल बना रहे और ग्लैंडरी अवार्ड जल्द से जल्द मिल सके इसके लिए अलग कमेटी बनाने की आवश्यकता है।

कृप्या इस पत्रिका द्वारा संबन्धित अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराने में मेरी मदद करें।

—सदस्य, राजस्थान पुलिस

आपके द्वारा भेजा गया 'लोक पुलिस' का चौथा अंक मिला। मुझे लोक पुलिस काफी पसंद आया। किसी ने तो पुलिस के बारे में कुछ अच्छा लिखा है। इससे पता चलता है कि आपकी सोच पुलिस के लिए सही है। पुलिस कानून, 1861 के पुलिस अधिनियम के अनुरूप है जिसमें स्वयं अंग्रजों ने चार बार बदलाव किया है। लेकिन, हमने इसमें अब तक बदलाव करना आवश्यक नहीं समझा।

मैं अगले अंक के लिए लेख भेजने की कोशिश करूंगा।

— सदस्य, झारखंड पुलिस

आप अपने विचार चौथे पेज पर दिये गए पते पर अदिति दत्ता को भेजें या ई–मेल करें:
aditi@humanrightsinitiative.org

पुलिस समाचार – हर कोने की हलचल

गुमशुदगी की शिकायत का रिकॉर्ड

पंजाब में पिछले दिनों जहां गुमशुदगी के केसों में बढ़त नजर आई, वहीं अज्ञात लाशों की संख्या में भी वृद्धी हुई है। न पहचाने जा सकने वाली लाशें उन लोगों की तो नहीं जिनकी गुमशुदगी की रिपोर्ट दर्ज हुई है। वर्तमान स्थिति में, पंजाब पुलिस के लिए इन दो बातों के बीच तालमेल बिठाना काफी कठिन नजर आ रहा था क्योंकि इसके लिए उचित रिकॉर्ड मौजूद नहीं था। इस मुशिकल को हल करने के लिए राज्य के डी.जी.पी. ने प्रत्येक थाने में गुमशुदा लोगों की रिपोर्ट दर्ज करने के लिए एक अलग डेस्क स्थापित करने का आदेश दिया है ताकि गुमशुदगी की रिपोर्ट का डाटा ठीक ढ़ंग से रखा जा सके।

डी.जी.पी.ने बताया कि यह डेस्क गुमशुदगी से संबंधित सारी जानकारियों तथा इस बारे में की गई तमाम कोशिशों का कम्प्युटर–रिकॉर्ड रखेगा।

डी.जी.पी. के इस आदेश में, इस काम को पूरा करने के लिए 26 कदम उठाने को कहा गया है। इसके तहत एक 'जानकारी पर्चा' भरना और इसकी जानकारी न केवल राज्य स्तर पर बल्कि सी.बी.आई. के गुमशुदगी से सम्बन्धित विशेष सेल तथा गृह मंत्रालय तक पहुंचाना भी शामिल है। इसके अलावा, अज्ञात शवों के सम्बन्ध में जांच अधिकारी द्वारा 24 कदम लेने का निर्देश दिया गया है।

गुमशुदगी तथा अज्ञात शवों से सम्बन्धित सभी जानकारियों को संघ गृह राज्य मंत्रालय द्वारा पहले से स्थापित 'ज़ोनल इंटिग्रेटेड पुलिस नेटवर्क' (ज़िप–नेट) पर भी भेजने की व्यवस्था की गई है।

(सौजन्यः हिन्दुस्तान वेबसाईट, 27 अगस्त 2010)

पुलिसभर्ती का नया/कॉर्पोरेट तरीका

गुजरात सरकार ने पुलिस विभाग के तकरीबन 10,000 रिक्त पदों पर भर्ती के लिए नया और कॉर्पोरेट तरीका अपनाया है। इसके अंतर्गत कॉर्पोरेट के नक्शेकदम पर पुलिस में भर्ती के लिए इच्छुक आवेदकों की मनोवैज्ञानिक और व्यवसायिक रूपरेखा तैयार करनी शुरू की गई है। यह भर्ती प्रक्रिया दो चरणों में पूरी होगीः–

इसके पहले चरण में ही प्रत्येक प्रत्याशी आई.पी.एस. अधिकारियों तथा गुजरात प्रशसनिक सेंवा के अधिकारियों के सवालों का जवाब देंगें। इसमें उनसे शिक्षा से लेकर वे इस सेवा में क्यों आना चाहते हैं, ये सारे सवाल किए जाएंगे।

दूसरे, प्रत्याशी का अप्रत्यक्ष तरीके से एक मनोवैज्ञानिक प्रोफेसर द्वारा निरिक्षण करके मनोवैज्ञानिक रूपरेखा तैयार किया जाएगा जिससे उसकी असली पहचान हो सकेगी।

अंतिम चरण में साक्षात्कार होगा जिसमें आमतौर से वरिष्ठ पुलिस अधिकारी शामिल होते थे, इस बार इसमें 7 मनोविज्ञान प्रोफेसरों को भी शामिल किया गया है ताकि वे उनसे सवाल करके तथा उनके रूझान से इस सेवा के लिए उनकी उपयोगिता को आंक सकें।

गुजरात पुलिस में भर्ती का यह तरीका अपनाने की बात गुजरात पुलिस भर्ती बोर्ड की हाल ही की उस कोशिश का हिस्सा है जिसमें पुलिस के विभिन्न पदों के लिए तकरीबन 10 हजार कर्मियों की भर्ती करना तय किया गया था। बोर्ड के चेयरमैन ने बताया कि 'इस प्रक्रिया के अंतर्गत तकरीबन 680 सब इंसपेक्टरों का चुनाव होगा। बोर्ड के पास पुलिस के विभिन्न पदों के लिए 5 लाख आवेदन आए हैं जिसमें से 10 हजार का चुनाव करना कठिन काम है।'

चयन के इस तरीके से भर्ती हुए पुलिसकर्मियों का कार्य–निष्पादन निश्चय ही बेहतर होगा क्योंकि इसके बाद वही लोग इस सेवा में आऐंगे जो वाकई इसमें काम करने के इच्छुक होंगे।

दूसरे राज्यों में भी पुलिस भर्ती का ऐसा तरीका अपनाना उपयोगी साबित हो सकता है।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम 19 अगस्त 2010)

उत्तर प्रदेश में अग्रिम ज़मानत (ऐंटीसिपेटरी बेल) की वापसी

1976 में इमरजेंसी के समय अग्रिम ज़मानत का प्रावधान उत्तर प्रदेश से हटा दिया गया था। लेकिन, राज्य सरकार ने अब दण्ड प्रक्रिया संहिता (उत्तर प्रदेश संशोधन) विधेयक को कुछ अपवाद के साथ पास कर दिया है।

अग्रिम ज़मानत

दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 438 (क) के तहत कोई भी व्यक्ति जिसे किसी आपराधिक मामले में गिरफ्तारी का अंदेशा हो तो, वह इस अंदेशे के आधर पर सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय में अग्रिम जमानत याचिका दायर कर सकता है। अगर अदालत जमानत मंजूर करती है तो यह उसी समय उस ऑर्डर की कॉपी और कम से कम 7 दिनों का नोटिस संबन्धित एस.पी. और अभियोजन को भेजेगी। इस दौरान, आरोपी नियमित जमानत के लिए अर्जी डाल सकता है। हांलाकि, जब अदालत के पास इस जमानत की अर्जी आती है तो वह इसे मंजूर भी कर सकती है और नामंजूर भी। यह केस और आवेदक के अनुरूप ही तय किया जा सकता है। ऐसी जमानत के समय आमतौर पर आवेदक की मौजूदगी बाध्य नहीं है।

यह जमानत तमाम विशेष कानूनों से सम्बन्धित केसों तथा जिस केस में सज़ा मृत्यु–दण्ड या आजीवन कारावास हो, में नहीं दी जाएगी। अग्रिम जमानत लेने के लिए आवेदक को स्वंय अदालत में उपस्थित होने की भी आवश्यकता नहीं होगी।

(सौजन्यः इंडियन एक्सप्रेस डॉट कॉम 11 अगस्त 2010)

बगैर वेतन पुलिसकर्मी

पूरे देश में पुलिस जहां अधिक काम और सहकर्मियों की संख्या में कमी की वजह से परेशान रहती है वहीं गुजरात के भरूच पुलिस की परेशानियों में और बढ़ोतरी तब हो गई जब अगस्त के महीने में तकरीबन 1800 पुलिसकर्मियों तथा लोक रक्षकों को पिछले महीने का वेतन महीने के पूरे दो सप्ताह बाद भी नहीं मिल सका।

भरूच जिला में 60 लोक रक्षक हैं जिन्हें 4500 रू वेतन मिलता है। इनके अलावा I और II श्रेणी के अलावा 1800 पुलिसकर्मी ऐसे है जिनका वेतन 5000–12000 रू है। जिला एस.पी.कार्यालय के सुत्रों के अनुसार जून में इनलोगों के वेतन में बढ़ोतरी होनी थी। भरूच पुलिस के अकाउंट विभाग ने जुलाई में संशोधित वेतन विधेयक जमा किया । लेकिन, बहुत सारे प्रश्न चिन्हों के कारण वित्त विभाग ने इसे वापस कर दिया। अब, पुलिस के अकाउंट विभाग ने इसे दुबारा जमा नहीं किया है। कार्यालय से केवल यह कहा गया है कि इस मामले को जल्दी देखा जाएगा जबकि जिला एस.पी. ने आश्वासन दिलाया है कि वह खुद इस मामले को देखेंगे और एकाउंट विभाग से संपर्क करेंगे।

हांलाकि, आम दिनों में गुजरात के इन पुलिसकर्मियों को महीने के पहले तीन दिनों के अन्दर वेतन मिल जाता है। दिल्ली में भी इनके वेतन मिलने के समय में विलम्ब नहीं होता और महीने के आखरी दिन ही वेतन पुलिसकर्मियों के अकाउंट में ट्रांसफर कर दिया जाता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि छठे वेतन आयोग के लागु होने के इतने दिनों के बाद भी गुजरात सरकार ने अब तक अपने पुलिसकर्मियों के वेतन को दोहराया नहीं है। अगर ऐसा समय से हो जाता तो शायद गुजरात पुलिस के इन अधिकारियों को परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता।

(सौजन्यः टाईम्स ऑफ इंडिया डॉट इंडिया टाईम्स डॉट कॉम 13 अगस्त 2010)

सी.एच.आर.आई., नई दिल्ली कार्यालय
प्रधान संपादकः ज़ीनत मलिक, बी–११७, प्रथम तल, सर्वोदय एन्कलेव, नई दिल्लीः११००१७, भारत
टेलीः +९१ ११ ४३१८ ०२००, फैक्सः +९१ ११ २६८६ ४६८८, info@humanrightsinitiative.org, www.humanrightsinitiative.org